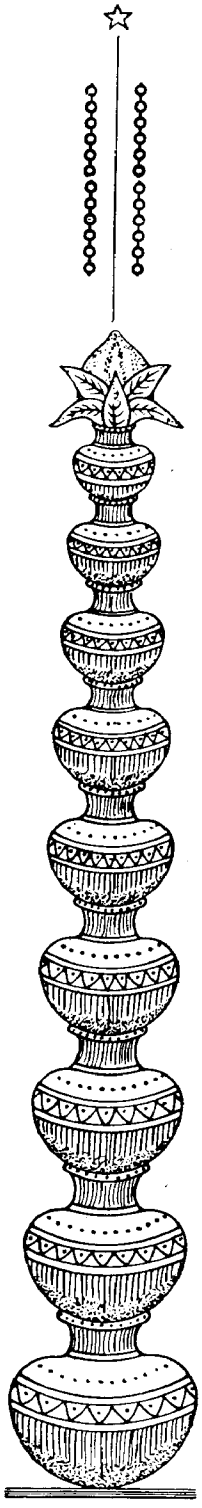

चेतनावादी जैनदर्शन ने चेतन (जीव) के विषय में जितना गहरा चिन्तन किया है, अचेतन (जड़-पुद्गल) के विषय में भी उतनी ही गम्भीरता से अन्वेषण किया है।

पुद्गल (Matter) के सम्बन्ध में जैन तत्त्वविद्या का यह चिन्तन पाठकों को व्यापक जानकारी देगा।

□ आचार्य श्रीआनन्द ऋषि
[श्रमण संघ के प्रभावक आचार्य]

जैनदर्शन में अजीव द्रव्य

□

जैनदर्शन यथार्थवादी और द्वैतवादी है। स्पष्ट है कि वह चैतन्य मात्र को ही एक मात्र तत्त्व के रूप में स्वीकार न करके अजीव द्रव्य को भी स्वीकार करता है। अजीव वह द्रव्य है जो तीनों प्रकार की चेतनाओं-चेतना (Consciousness), अर्ध-चेतना (Sub-Consciousness) और अलौकिक चेतना (Super-Consciousness) से रहित है। अर्थात् जिसमें चेतनागुण का पूर्ण अभाव है। जिसे सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती है वह अजीव द्रव्य है।[1] पर यह भावात्मक तत्त्व है, अभावात्मक नहीं। इसके चार भेद हैं—अजीवकाया; धर्माधर्माकाशपुद्गलाः।[2]

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय[3] ये चार अजीवकाय हैं। इन्हें अस्तिकाय कहने का तात्पर्य है कि ये विस्तार युक्त है अर्थात् ये तत्त्व सिर्फ एक प्रदेश रूप या अवयव रूप नहीं है किन्तु प्रदेशों के समूह रूप है। यद्यपि पुद्गल मूलतः एक प्रदेश रूप है लेकिन उसके प्रत्येक परमाणु में प्रचय रूप होने की शक्ति है। काल की गणना इन अस्तिकायों में नहीं की गयी है। क्योंकि कुछ जैनाचार्य उसको स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में नहीं स्वीकार करते हैं और जो उसे द्रव्य मानते हैं। वे भी उसे प्रदेशात्मक ही मानते हैं। प्रदेश प्रचय रूप नहीं।

आकाश और पुद्गल ये दो तत्त्व न्याय सांख्य आदि दर्शनों में माने गये हैं परन्तु धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय जैन-दर्शन की देन है। इनके अस्तित्व की पुष्टि विज्ञान से भी होती है। विज्ञान तेजोवाही ईथर, क्षेत्र (Field) और आकाश (Space) इन तीनों को मानता है। उसकी दृष्टि में तेजोवाही ईथर सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है तथा विद्युत चुम्बकीय तरंगों की गति का माध्यम है। प्रो० मैक्सवान ने लिखा है कि ईथर सामान्य पार्थिव वस्तुओं से भिन्न होना चाहिए। वैज्ञानिक सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि की स्थिरता का कारण गुरुत्वाकर्षण को मानते हैं। संभव है वे आगे जाकर इसकी अपौद्गलिकता को स्वीकार कर लें।

अब हम साधर्म्य व वैधर्म्य के दृष्टिकोण से इन द्रव्यों पर विचार करेंगे। अपने सामान्य तथा विशेष स्वरूप से च्युत न होना नित्यत्व है और अपने से भिन्न तत्त्व के स्वरूप को प्राप्त न करना अवस्थितत्व है। ये दोनों धर्म सभी द्रव्यों में समान हैं। इससे स्पष्ट है कि जगत अनादि निधन है तथा इसके मूल तत्त्वों की संख्या एकसी है। पुद्गल को छोड़कर अन्य कोई द्रव्य मूर्त नहीं है क्योंकि वे द्रव्य इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, अतएव अरूपित्व पुद्गल को छोड़कर शेष चार द्रव्यों का साधर्म्य है। धर्म, अधर्म, आकाश ये द्रव्य संख्या में एक व्यक्ति हैं और ये निष्क्रिय भी है अत: व्यक्तित्व और निष्क्रियत्व ये दोनों उक्त द्रव्यों का साधर्म्य तथा जीव और पुद्गल का वैधर्म्य है। यहाँ निष्क्रियत्व से तात्पर्य गतिक्रिया से है न कि परिणमन से, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। आकाश के जितने स्थान को एक अविभागी पुद्गल-परमाणु रोकता है, वह प्रदेश है। परमाणु जबकि अपने स्कन्ध से अलग हो सकता है पर प्रदेश नहीं। प्रदेश की अपने स्कन्ध से विमुक्त होने की कल्पना सिर्फ बुद्धि से की जाती है। धर्म, अधर्म, आकाश एक ऐसे अखण्ड स्कन्ध रूप हैं जिनके असंख्यात अविभाग्य सूक्ष्म अंश सिर्फ बुद्धि से कल्पित किये जा सकते हैं। इनमें से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय प्रदेशी हैं। आकाश अन्य द्रव्यों से बड़ा होने के कारण अनन्त प्रदेशी है। इस प्रकार अखण्डता पुद्गल को छोड़कर बाकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन द्रव्यों का साधर्म्य है। निश्चयनय की दृष्टि से यों तो सभी द्रव्य स्वप्रतिष्ठित हैं पर व्यवहारनय की दृष्टि से आकाश इतर द्रव्यों का आधार है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के सम्बन्ध के कारण आकाश के दो भेद हो जाते हैं—(१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश। आइन्स्टाइन ने कहा है कि आकाश की सीमितता उसमें रहने वाले Matter के कारण है अन्यथा आकाश अनन्त है। इसी तरह जैनदर्शन की भी मान्यता है कि जहाँ तक धर्म, अधर्म आकाश से सम्बन्धित हैं वहाँ तक लोकाकाश है, उसके परे अलोकाकाश है जो कि अनन्त है। धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अमूर्त होने के कारण इन्द्रियगम्य न होने के कारण लौकिक प्रत्यक्ष के द्वारा इनकी सिद्धि नहीं हो सकती। आगम प्रमाण से और उनके कार्यों को देखकर किये गये अनुमान प्रमाण से उनकी सिद्धि की जाती है।

जीव और पुद्गल की गति एवं स्थिति के उपादान कारण तो वे स्वयं हैं लेकिन निमित्त कारण, जो कार्य की उत्पत्ति में अवश्य अपेक्षित है एवं जो उपादान कारण से भिन्न है, धर्म-अधर्म द्रव्य हैं। इस प्रकार इन द्रव्यों की गति में निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है तो अधर्मास्तिकाय उनकी स्थिति में निमित्त कारण है। ये दोनों उदासीन हेतु हैं—जैसे मछली की गति में जल और श्रान्त पथिक को विश्राम के लिए वृक्ष[3]। इन सब द्रव्यों को आश्रय देने वाला आकाश है। आधुनिक विज्ञान में स्थिति, गति और गति निरोध को Space के कार्यों के रूप में माना गया है लेकिन जैन दर्शन में इन तीन द्रव्यों के ये तीन स्वतन्त्र कार्य हैं। Locality की दृष्टि से ये तीनों द्रव्य समान हैं पर कार्यों की दृष्टि से उनमें भेद है।

अब हम काल द्रव्य को भी देख लें। "वर्त्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य"[4] वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व काल के ही कारण संभव है। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक बर्गसन् ने सिद्ध किया है कि काल एक Dynamic reality है। काल भी उपर्युक्त द्रव्य की तरह अनुमेय है। भिन्न-भिन्न क्षणों के वर्तमान रहना वर्तना है। परिणामः अर्थात् अवस्थाओं का परिवर्तन भी बिना काल के सम्भव नहीं है। कोई कच्चा आम समय पाकर पक जाता है। आम की दोनों विभिन्न अवस्थायें एक समय में एक साथ नहीं हो सकतीं। क्रिया व गति तब भी सम्भव होती है जब कोई वस्तु पूर्वापर क्रम से भिन्न अवस्थाओं को धारण करती है और यह बिना काल के सम्भव नहीं है। प्राचीन व नवीन, पूर्व और पाश्चात्य आदि व्यवहार भी काल के बिना सम्भव नहीं हो पाते हैं। काल के दो भेद हैं—(१) पारमार्थिक काल, (२) व्यावहारिक काल। इनमें से पारमार्थिक काल नित्य, निराकार, अनन्त है एवं इसे ही भिन्न-भिन्न उपाधियों से सीमित करने से या विभक्त करने से दण्ड, दिन, मास, वर्ष आदि समय के रूप बनते हैं जो कि व्यावहारिक काल हैं। व्यावहारिक काल का प्रारम्भ और अन्त होता है।

दृश्यात्मक अखिल जगत् पुद्गलमय है।[5] तत्त्वार्थ-सूत्र के अनुसार इसकी परिभाषा है—"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः" तथा सर्वदर्शनसंग्रह के अनुसार "पूरयन्ति गलन्ति च पुद्गलाः।" वैशेषिक के पृथ्वी, जल, अग्नि आदि तत्त्वों का अन्तर्भाव पुद्गल द्रव्य में हो जाता है। विज्ञान में Matter को ठोस, तरल एवं गैस (Gases) के रूप में माना गया है। इस दृष्टि से पृथ्वी, जल तथा वायु पुद्गल द्रव्य में अन्तर्भूत हो जाते हैं। विज्ञान जिसको Matter और न्याय-वैशेषिक जिसे भौतिक तत्त्व या सांख्य जिसे प्रकृति कहते हैं, जैनदर्शन में उसे पुद्गल की संज्ञा दी गई है। यद्यपि पुद्गल शब्द का प्रयोग बौद्ध-दर्शन में भी हुआ है लेकिन वह भिन्न अर्थ में—आलयविज्ञान, चेतना-संतति के अर्थ में हुआ है। वैशेषिक आदि दर्शन में पृथ्वी को चतुर्गुणयुक्त, जल को गन्धरहित अन्य तीन गुणों वाला, तेज को गन्ध और रस रहित अन्य दो गुणों वाला तथा वायु को मात्र स्पर्श युक्त माना गया है; परन्तु जैन-दर्शन में पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु का भेद मौलिक और नित्य नहीं है अपितु व्युत्पन्न और गौण है, क्योंकि पृथ्वी जल आदि सभी के पुद्गलों में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चारों गुण पाये जाते हैं। विज्ञान भी मानता है कि वर्ण, गन्ध, रस व स्पर्श इन चतुष्कोटि में से किसी एक के प्राप्त होने पर शेष गुण भी उस वस्तु में व्यक्त या अव्यक्त रूप से रहते हैं। गन्धवहन की प्रक्रिया से सिद्ध हुआ है कि अग्नि में भी गन्ध पायी जाती है।

वर्ण के पाँच, गन्ध के दो, रस के पाँच तथा स्पर्श के आठ प्रकार हैं—
वर्ण—(१) काला, (२) नीला, (३) लाल, (४) पीला, (५) सफेद,
गन्ध—(१) सुगन्ध, (२) दुर्गन्ध,
रस—(१) तिक्त, (२) कडुआ, (३) कषैला, (४) खट्टा, (५) मीठा,
स्पर्श—(१) कठिन, (२) मृदु, (३) गुरु, (४) लघु, (५) शीत, (६) उष्ण, (७) रूक्ष, (८) स्निग्ध।[6]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

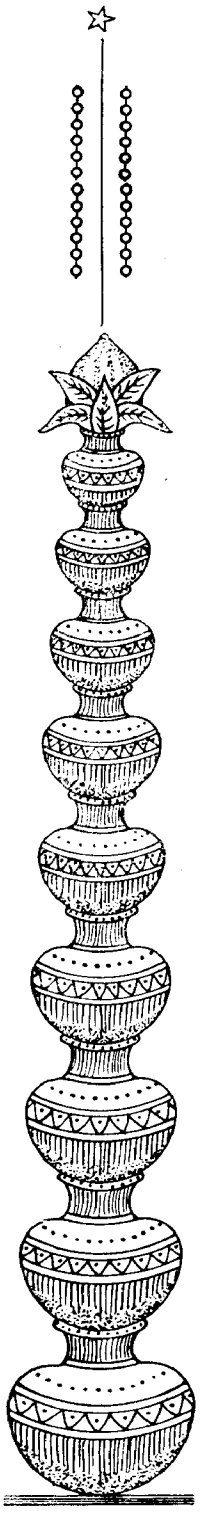

यह सब बीस, पुद्गल के असाधारण गुण हैं जो तारतम्य एवं सम्मिश्रण के कारण संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूप ग्रहण करते हैं। शब्द, छाया, आतप और उद्योत को भी पौद्गलिक माना गया है। शब्द आकाश का गुण नहीं है; पर भाषा वर्गणा के पुद्गलों का विशिष्ट परिणाम है। छाया प्रकाश के ऊपर आवरण आ जाने से पैदा होती है। विज्ञान में भी तमरूप एवं ऊर्जा का रूपान्तरण रूप छाया दो प्रकार की मानी गई हैं और प्रो० मैक्सवान् के अनुसार ऊर्जा और Matter अनिवार्य रूप से एक ही हैं। अतः स्पष्ट है कि छाया भी पौद्गलिक ही है। तम (अन्धकार) जो दर्शन में बाधा डालने वाला एवं प्रकाश का विरोधी परिणाम है, को विज्ञान भी भावात्मक मानता है क्योंकि उसमें अदृश्य तापकिरणों का सद्भाव पाया जाता है।

पुद्गल अणुरूप और स्कन्धरूप होते हैं। पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं। साधारणतया कोई स्कन्ध बादर और कोई सूक्ष्म होते हैं। बादर स्कन्ध इन्द्रियगम्य और सूक्ष्म इन्द्रिय अगम्य होते हैं (अनुयोग द्वार)। इनको छः भागों में विभक्त किया गया है—

बादर-बादरस्कन्ध—जो टूटकर जुड़ न सके, जैसे लकड़ी, पत्थर।

बादर स्कन्ध—प्रवाही पुद्गल जो टूटकर जुड़ जाते हैं।

सूक्ष्म बादर—जो देखने में स्थूल किन्तु अकाट्य हो, जैसे—धूप।

बादर सूक्ष्म—सूक्ष्म होने पर भी इन्द्रियगम्य हो, जैसे—रस, गन्ध, स्पर्श।

सूक्ष्म—इन्द्रियों से अगोचर स्कन्ध तथा कर्मवर्गणा।

सूक्ष्म-सूक्ष्म—अत्यन्त सूक्ष्म स्कन्ध यथा कर्मवर्गणा से नीचे के द्व्ययुक्त पर्यन्त पुद्गल।

पुदगल का वह अंश जो एक प्रदेशी (एक प्रदेशात्मक) है। जिसका आदि, मध्य व अन्त नहीं पाया जाता, या दूसरी भाषा में कहें तो जो स्वयं अपना आदि, मध्य व अन्त है।[७] जो अविभाज्य सूक्ष्मतम है, परमाणु कहलाता है। यह सृष्टि का मूल तत्त्व है। उपनिषदों की तरह जैन-दर्शन भी भौतिक जगत के विश्लेषण को पृथ्वी इत्यादि तत्त्वों में पहुँचकर नहीं रोक देता बल्कि वह विश्लेषण की प्रक्रिया को और पीछे पहुँचा देता है। ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रिट्स और ल्युपिकस के समान वह परमाणुओं में गुणात्मक भेद नहीं मानता। विज्ञान की मान्यता है कि मूलतत्त्व अणु (atom) अपने चारों ओर गतिशील इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन के संख्या भेद से चाँदी, ताँबा, लोहा, ऑक्सीजन आदि अवस्थाओं को धारण करता है। जैन-दर्शन का परमाणु भी विभिन्न संयोगों द्वारा भिन्न-भिन्न तत्त्वों को बनाता है। परमाणु स्वभावतः गतिशील है—इनमें स्निग्धता और रूक्षता होने के कारण परस्पर बन्ध होता है। इस तरह द्वययुक्त, त्रययुक्त····स्कन्ध आदि बनते हैं। सृष्टि की प्रक्रिया में सृष्टिकर्ता ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।

पुद्गल परमाणु जब तक अपनी सम्बन्ध शक्ति से शिथिल या घने रूप से परस्पर जुड़े रहते हैं तब वे स्कन्ध कहलाते हैं। स्कन्ध की उत्पत्ति संघात और भेद दोनों से होती है। उत्पत्ति प्रक्रिया के आधार पर स्कन्ध के भेद यों हैं—(१) स्कन्धजन्य स्कन्ध (२) परमाणुजन्य स्कन्ध (३) स्कन्धपरमाणुजन्य स्कन्ध।

सांख्य प्रकृति को अनित्य व पुरुष को नित्य, तो वेदान्त परम तत्त्व को एकान्ततः नित्य और बौद्ध यथार्थ को क्षणिक मानते हैं, पर जैन-दर्शन की दृष्टि में सभी द्रव्य स्पष्ट हैं कि पुद्गल भी द्रव्यार्थिक दृष्टि से नित्य व पर्यायार्थिक दृष्टि से अनित्य हैं। चूंकि पुद्गल इस तरह अविनाशी ध्रुव है अतः शून्य में से सृष्टि का निर्माण संभव नहीं है, सिर्फ परिवर्तन होता, न तो पूर्णतः नयी उत्पत्ति संभव है और न पूर्णतः विनाश ही। वैज्ञानिक लैव्हाइजर के शब्दों में सृष्टि में कुछ भी निर्मेय नहीं सिर्फ रूपान्तर होता है।

---

१ पञ्चास्तिकाय, २।१२४-१२५
२ तत्त्वार्थसूत्र, अ० ४
३ व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र श० १३, उद्देश्य ४, सू. ४८१
४ तत्त्वार्थसूत्र अ० ५, सूत्र २३
५ भगवती सूत्र श० १३, उद्देश्य ४, सूत्र ४८१
६ भगवती सूत्र श० १२ उद्देश्य ४, सूत्र ४५०
७ राजवार्तिक ५।७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org